"शिक्षा और सम्मान तो सबका हक़ है"– संगीता फरासी

प्रतिभा कटियार

एक इंसानी ज़िन्दगी की कहानी तब सुनने-सुनाने लायक़ बनती है जब उसमें गहरे सामाजिक सरोकार हों, उन सरोकारों को हासिल करने की दृढ़ इच्छा हो, और इस सफ़र में मिलने वाली मुश्किलों से जूझने की दृढ़ता हो। उत्तराखण्ड के श्रीनगर ज़िले के राजकीय प्राथमिक विद्यालय गहड़ की शिक्षिका संगीता फरासी की कहानी उम्मीद के ऐसे ही धागों से बुनी हुई है।

चित्र 1: साथ मिलकर खेल गतिविधि का आनन्द लेते बच्चे

उत्तराखण्ड के श्रीनगर शहर की एक ख़ूबसूरत पहाड़ी पर एक स्कूल है, राजकीय प्राथमिक विद्यालय गहड़। इस स्कूल में एक कहानी लिखी जा रही है। लिख रही हैं स्कूल की शिक्षिका संगीता फ़रासी। शिक्षा और सम्मान इस कहानी के मुख्य पात्र हैं। यह कहानी है शहर में भीख माँगकर गुज़ारा करने वालों की बस्ती की। हिक़ारत, दुत्कार के लिए अभिशप्त इस समुदाय की शिक्षा के बारे में न तो कभी राज्य ने सोचा, और न ही समाज ने। दो वक़्त की रोटी की जुगाड़ को भटकते इस समुदाय की ज़रूरतों में शिक्षा सपना भी नहीं रही। फिर इस समुदाय पर चोरी, पॉकेटमारी जैसे आरोप भी लगे। पुलिस कभी भी, किसी भी इल्ज़ाम में इन्हें पकड़ लेती। इसलिए यह कहानी है पढ़ने-लिखने से वंचित किए गए व समाज की तथाकथित सम्भ्रान्त दुनिया से दुत्कारे गए लोगों के बीच एक शिक्षिका के जाने, उनकी चुनौतियों को समझने, और उनका भरोसा हासिल करने की। साथ ही यह कहानी है बच्चों का हाथ थाम स्कूल तक लाने, उन्हें राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं तक पहुँचाने, और पढ़ने-लिखने में रुचि पैदा करने वाली शिक्षिका और आत्मविश्वास से भरे बच्चों की। समावेशन को समझने और उसपर काम करने के लिए जिन दो मुख्य बातों की ज़रूरत है, उन दोनों पर संगीता मैडम लगातार काम करने का प्रयास कर रही हैं। पहली बात समावेशन की ज़रूरत को समझना, यानी उन मुद्दों को देख पाना जो बहिष्करण का कारण बनते हैं, समाज में भी और स्कूल में भी। दूसरी बात है प्रक्रिया। समावेशन इतने सहज ढंग से हो कि किसी को कुछ पता ही न चले, और

तमाम विविध अस्मिताएँ अपनी पहचान के साथ आपस में घुल मिल कर रहें। दस बरस पहले जब संगीता मैडम ने इस दिशा में क़दम उठाया था तो उन्हें नहीं पता था कि सफ़र कितना लम्बा चलेगा, कितना बदलाव आएगा। समावेशन के लिए उनके प्रयासों को दो हिस्सों, सामाजिक बदलाव और अकादमिक प्रयास, के रूप में देखा जा सकता है :

चित्र 2 : सामाजिक-भौगोलिक परिस्थितियाँ पढ़ाई के आड़े नहीं आतीं

सामाजिक बदलाव

सन्दर्भों को समझना : किसी भी समस्या का निवारण जितना ज़रूरी है, उतना ही ज़रूरी है उसके कारणों को समझना। संगीताजी ने यही किया। तब उनके सामने खुली एक ऐसी बस्ती की दुनिया, जहाँ तिरस्कार, शोषण और अन्याय से उपजी ग़रीबी के लिए अभिशप्त लोग भीख माँगकर गुज़ारा करते हैं। मैडम को बात समझ में आई कि जिनके लिए मूल प्रश्न अपना पेट भरने और पहचान का हो, उनसे शिक्षा की बात करने से पहले बहुत कुछ करना होगा। कुछ ऐसा जिससे यह समुदाय भी अपने और अपने बच्चों के लिए सपने देख सके और हमपर भरोसा कर सके।

भरोसा जीतना : समुदाय का भरोसा जीतना बहुत चुनौतीपूर्ण था। संगीताजी ने समुदाय की ज़रूरत को समझा और कहा, "आप सबके बच्चे जितना दिनभर में भीख माँगकर कमाते हैं, उतनी आर्थिक मदद आप सबकी करूँगी। आप अपने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू करो।" और संगीताजी ने बच्चों के अभिभावकों को राशन देना शुरू किया। यह उन्होंने अपने निजी बजट से किया। यह सब करने से पहले मैडम ने बस्ती में रोज़ जाकर उनकी समस्याओं को सुना, समझा, और कुछ हद तक उन्हें हल करना शुरू किया।

नियमितता एक अड़चन : बच्चों का मैडम के पास नियमित आना अभी भी समस्या थी। वे बार-बार भीख माँगने चले जाते थे। कुछ आदत के चलते और कुछ अभिभावकों के दबाव के चलते। इस समस्या पर मैडम ने दो तरह से काम किया। पहला, उन्होंने समुदाय के लोगों विशेषकर माँओं से कहा कि जिसका बच्चा नियमित स्कूल आएगा उसकी माँ को 'बेस्ट मॉम अवॉर्ड' दिया जाएगा। इस अवॉर्ड में राशन और कपड़े भी दिए जाएँगे। यह सब ख़र्च संगीताजी ख़ुद वहन कर रही थीं। दूसरे, उन्होंने सब इंस्पेक्टर संध्या को अपनी समस्या के बारे में बताया। उपाय के तौर पर सब इंस्पेक्टर संध्या को जब भी बच्चे भीख माँगते दिखते, वे उन्हें प्यार से समझाकर मैडम के पास भेज देतीं।

इन उपायों से बच्चों की नियमितता बढ़ी। ज़ाहिर है, इसका बहुत असर उनके अच्छा पढ़ने-लिखने और अन्य बातें सीखने के अवसरों पर भी पड़ा। बेस्ट मॉम का पहला अवॉर्ड मिला था अंकुल की माँ को। अंकुल अब हाई स्कूल की परीक्षा दे रहा है और बस्ती के बाक़ी बच्चों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करने के साथ ही उनकी मदद भी करता है।

स्कूल के लिए तैयारी : बच्चों का नियमित आना अभी मैडम के घर तक ही था। यहाँ मैडम बच्चों के साथ कुछ खेल खेलतीं, कहानियाँ सुनातीं, पढ़ने-लिखने के मायने समझातीं। स्कूल जाने का सिलसिला अभी शुरू नहीं हुआ था। स्कूल जाने की तैयारी में उन्हें आपस में व शिक्षकों से बात और व्यवहार करना सिखाना ज़रूरी था। उनके लिए स्कूल ड्रेस, बस्ता, किताबें, जूते, आदि की व्यवस्था की जानी थी। इनमें सामान की व्यवस्था करना अब आसान होने लगा था क्योंकि शहर के कुछ लोग इस मुहिम में साथ देने आगे आने लगे थे। मुख्य दिक़्क़त थी व्यवहार की, भाषा की। बातचीत में गाली देना सामान्य बात थी क्योंकि बच्चे इसी माहौल में पले-बढ़े थे। बड़ों से कैसे बात करनी होती है नहीं जानते थे। चिन्ता यह भी थी कि अगर यह सब बदला नहीं तो स्कूल में जो बाक़ी बच्चे आ रहे हैं, उन्हें और उनके अभिभावकों को परेशानी भी हो सकती है। संगीताजी बताती हैं, "मेरे पास

"संगीता फरासी एक मेहनती अध्यापिका हैं। उन्होंने जिस तरह अभिभावकों को विश्वास में लेकर बच्चों को स्कूल तक लाने का प्रयास किया है वो वस्तुतः किसी संस्था के पूर्णकालिक काम के समान कहा जा सकता है। बच्चों के लिए अपने संसाधनों से स्कूल आने-जाने की व्यवस्था सुनिश्चित करना, और शाम को अपने घर पर उन्हें पढ़ाना प्रेरणा देता है। बस्ती के परिवारों से उन्होंने जो आत्मिक रिश्ता बनाया है, उनका भरोसा जीता है वो अपने-आप में विशेष है।"

अश्विनी रावत, खण्ड शिक्षा अधिकारी खिर्सू, ज़िला पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

इसके लिए दो ही चीज़ें थीं– एक धैर्य और दूसरा प्रेम। मैं जानती थी इस बदलाव में वक़्त लगेगा। हालाँकि कई बार मैं भी कमज़ोर पड़ जाती थी, लेकिन फिर मासूम चेहरे याद आ जाते और मुझे ऊर्जा मिलती।"

कुछ तो लोग कहेंगे : एक तरफ़ चुनौती थी बच्चों को स्कूल लाना, पढ़ाना, इसके लिए उन्हें तैयार करना, उनके घर वालों की मुश्किलें समझना, समाधान निकालना और भरोसा जीतना। दूसरी तरफ़ चुनौती थी लोगों का यह कहना, "यह तो पागलपन है;" संशय करना, "ज़रूर इनाम लेने के लिए कर रही होंगी, ज़्यादा दिन नहीं करेंगी"; ''घर से पैसे लगाकर कितने दिन कर पाएँगी''; "इसके पीछे ज़रूर कोई और मंशा होगी"; आदि। ऐसा भी नहीं कि संगीताजी पर इसका कोई असर न पड़ता हो, वो उदास न हुई हों, टूटी न हों, लेकिन उनका साथ दिया उनके परिवार ने। वे मन-ही-मन सोचतीं, "कुछ तो लोग कहेंगे", और मुस्कुराकर बस्ती की तरफ़ चल पड़तीं।

बच्चों को नए अनुभव देना : पढ़ना सिर्फ़ स्कूल में नहीं होता है, न सिर्फ़ किताबों से। संगीताजी इस बात को जानती थीं, और उन्होंने बच्चों की ज़िन्दगी में नए अनुभवों को शामिल करना शुरू किया। ऐसे अनुभव जो उनके जीवन में अब तक नहीं थे। मसलन, आसपास की जगहों को देखने जाना, उनके बारे में बच्चों से बातचीत करना, कार में बैठकर घूमना, मेज़-कुर्सी पर बैठकर खाना, टीवी देखना, आदि। ऐसे ही अनुभवों में एक अनुभव था बच्चों को कुछ खिलाने के लिए होटल ले जाना। जिस होटल के दरवाज़े के बाहर से ही भगा दिए जाते हों, वहाँ निडरता से जाना, टेबल पर मिल बैठ कर खाना, पार्टी करना एक नई दुनिया के खुलने जैसा था। वो बताती हैं, "उस दिन मैं बच्चों के साथ एक होटल में थी। तेज़ बारिश हो रही थी। एक बच्चा होटल के शीशे के इस पार से बारिश देख रहा था। एकदम चुप, एकटक। मैंने उससे पूछा, 'इतने ग़ौर से क्या देख रहे हो?' उसने भरी-भरी आँखों से मुझे देखा और कहा, 'आज आपकी वजह से हम यहाँ हैं। बारिश में जब सारा शहर भीग रहा है, हम नहीं भीग रहे। कोई और दिन होता तो हमें सिर छुपाने के लिए भी कोई यहाँ खड़ा नहीं होने देता। हर कोई हमें डाँटकर भगा देता।'' उस बच्चे की आँखों में क्या था, पता नहीं। लेकिन संगीता मैडम की आँखें आज भी उस घटना के ज़िक्र भर से छलक पड़ती हैं।

अकादमिक प्रयास

स्कूल जाने से पहले, स्कूल से आने के बाद : बच्चे संगीताजी से हिल मिल गए थे, अभिभावक भी उनपर भरोसा करने लगे थे, लेकिन इतना-भर काफ़ी नहीं था। बच्चों की स्कूल जाने की तैयारी भी होनी थी। तो कभी बस्ती में जाकर और कभी बच्चों को घर बुलाकर उनकी पढ़ाई-लिखाई शुरू हुई। इस मुहिम में रेखा और अनिल नाम के युवाओं ने साथ दिया, और शांतिजी ने न सिर्फ़ साथ दिया, हौसला भी दिया। संगीताजी ने बताया "हम लोग बच्चों को रोज़ थोड़ी देर पढ़ाते थे। कोशिश यह होती कि इस पढ़ाई-लिखाई से उन्हें ऊब न हो। कभी उनकी पसन्द के खेल होते, कभी गाने होते, खाना-पीना होता, लेकिन साथ में होतीं किताबें। कहानियों और कविताओं से बात शुरू होती और अक्षर पहचान व रोज़मर्रा के जीवन में इस्तेमाल होने वाले गणित से जा जुड़ती। बच्चों के लिए यह मज़ेदार था कि खेल-खेल में किसने किसको कितने धक्के मारे, किसने कितनी रोटी खाईं, यह भी गणित है।" बच्चों का जीवन बदलने लगा था। स्कूल की यूनिफ़ॉर्म में तैयार बच्चे मैडम द्वारा लगाई गई मोटरगाड़ी में बैठकर स्कूल जाते, दिनभर स्कूल में खेलकूद, पढ़ाई, और वापस मैडम के घर जहाँ मिलता बढ़िया भात। ये सिलसिला बरसों से ऐसे ही चल रहा है। अब भी बच्चे स्कूल के बाद मैडम के घर में देखे जाते हैं, जहाँ खाना खाते हैं, पढ़ाई होती है, खेलते हैं, टीवी देखते हैं। बच्चों के बस्ते मैडम के घर पर ही रहते हैं। यहीं से सुबह फिर बच्चे बस्ते लेकर गाड़ी में बैठकर स्कूल जाते हैं।

इन बच्चों के स्कूल आने से पहले स्कूल में बच्चों की संख्या 11 थी और अब 23 है। लेकिन यहाँ बात नामांकन बढ़ने से आगे की है। बच्चों में कोई भेदभाव नहीं है, अभिभावकों को भी कोई परेशानी नहीं है, सब मिलकर प्रेम से खेलते हैं, पढ़ते हैं।

सन्दर्भ से जोड़कर पढ़ाना : मैडम हर बच्चे को गले लगाती हैं, सिर पर हाथ फेरती हैं, और उनका हौसला बढ़ाती हैं। हाँ, यही है उनकी शिक्षण विधि का पहला हिस्सा। यही है उनका अपनी

चित्र 3 : बच्चों के आने-जाने के लिए शिक्षिका द्वारा की गई गाड़ी की व्यवस्था

चित्र 4 : दक्षता-आधारित समूहों पर काम करतीं शिक्षिका

पेडागोजी के लिए बालमित्र वातावरण बनाना। बच्चे मैडम से अपनापन महसूस करने लगे हैं और उनके द्वारा सीखने-सिखाने के लिए करवाई जा रही हर गतिविधि में उत्साह से भागीदारी करने लगे हैं।

जब तक बच्चों के सन्दर्भों को नहीं समझेंगे, सीखने-सिखाने के बीच एक दूरी रहेगी ही। इसका एहसास मुझे उस रोज़ स्कूल पहुँचकर हुआ। दो कमरे और एक छोटे से बरामदे वाले स्कूल में बच्चे व्यवस्थित ढंग से अलग-अलग समूहों में पढ़ रहे थे। संगीताजी बच्चों के बीच बैठी हुई थीं। उनके चारों तरफ़ अलग-अलग घेरे थे। ये अलग-अलग दक्षता स्तर के बच्चे थे, और वो सबके साथ, बारी-बारी से काम कर रही थीं। मैंने बच्चों से दोस्ती की, कुछ बच्चे शरमाए, लेकिन जल्दी ही दोस्त बन गए। मैं कक्षा 1 के बच्चों के उस समूह के पास बैठ गई जो अभी वर्णों से शब्द बनाना और शब्दों में वर्ण पहचानना सीख रहे थे। सोचा, जो ये पढ़ रहे हैं उसी के बारे में क्यों न बात की जाए! मैंने पूछा, "अच्छा, 'ब' से और क्या-क्या होता है?" बच्चों ने ज़रा भी देर किए बिना बताना शुरू किया... बारिश, बकरी, बेकार, बकबक, बदबू, बेर। फिर 'क' से कबूतर कहीं जा उड़ा, और जो शब्द आए वो थे... कूड़ा, कचरा, काना, कल्लू, कचूमर, कद्दू। बच्चों को उनके सन्दर्भ से जोड़कर पढ़ाया जाना ज़रूरी है, यह सन्दर्भ यहाँ ठीक-ठीक खुल रहा था। फिर कुछ देर गणित के मौखिक सवालों पर काम किया जिससे बच्चे जोड़-घटाना समझ सके। बाद में बच्चों से पूछा, "तुम्हें खाने में क्या पसन्द है?" बच्चों ने कहा... दाल, चावल, भात, दाल, दाल-भात, खिचड़ी... बस इतना ही।

टीएलएम का उपयोग और एक दूसरे से सीखना : संगीता मैडम बच्चों के मन को समझने की कोशिश करतीं जिससे उन्हें पढ़ना अच्छा लगे। उन्होंने खेल गतिविधियाँ, खिलौने और साथ में टीएलएम आदि का इस्तेमाल करना शुरू किया। कुछ जोड़ना था, कुछ घटाना था, कुछ शब्दों के खेल खेलने थे, कहानियाँ सुननी थीं, सुनानी थीं और लिखने-पढ़ने की ओर बढ़ना था। प्रोत्साहन का जादू ख़ूब चल रहा था। एक बच्चा कुछ सीखता तो उसे वही बात दूसरे को सिखाने को कहतीं। उन्होंने ऐसे समूह बनाए जिनमें अलग-अलग दक्षता वाले बच्चे भी थे जो एक दूसरे से सीख रहे थे। पढ़ना और लिखना बोझ न लगे, मज़ेदार लगे, इसका पूरा ध्यान उन्होंने रखा। तमाम समस्याओं के बीच अब बच्चों को सहजता से लिखना-पढ़ना आने लगा है।

स्कूल संसाधन और प्रबन्धन सब बच्चों के हवाले : स्कूल में दो कमरे हैं। एक कमरा मिला जुला रीडिंग रूम व लाइब्रेरी का है जिसमें आयु समूह अनुसार बच्चों के लिए विविध रोचक किताबें हैं। यहाँ बच्चों के पढ़ने के लिए अच्छी बैठक व्यवस्था है। लाइब्रेरी का संचालन बच्चे ही करते हैं। दूसरे कमरे में हिन्दी, अँग्रेज़ी, गणित, ईवीएस, आदि विषयों के तरह-तरह के टीएलएम, प्रोजेक्ट, मॉडल हैं जिन्हें बच्चों ने मैडम के साथ मिलकर बनाया है। बच्चे इनके बारे में विस्तार से बात कर लेते हैं, और बता पाते हैं कि किस प्रोजेक्ट का मतलब क्या है। इस कमरे में एक कम्प्यूटर है जिसका उपयोग बच्चे ही करते हैं। उन्हें पता है किस लिंक पर कौन-सी कहानी मिलेगी, और कहाँ सवालों के बारे में बात होगी। वे पूरे आत्मविश्वास से कम्प्यूटर चलाते हैं, और डेटा के लिए मैडम का फ़ोन ले आते हैं। मैडम

चित्र 5 व 6 : बच्चों और शिक्षकों द्वारा बनाए गए टीएलएम

का फ़ोन तो जैसे बच्चों का अधिकार क्षेत्र है। मैडम भी ख़ुशी-ख़ुशी अपना फ़ोन उन्हें दे देती हैं।

इस तरह आपसी समन्वय से यहाँ शिक्षण भी होता है और खेल भी। यही वजह है कि स्कूल के 4 बच्चे राज्य स्तरीय खेलों में प्रतिभाग करने जा रहे हैं। समाज में भले ही तरह-तरह के भेदभाव का व्यवहार हो, लेकिन स्कूल में इसकी कोई जगह नहीं है। सारे बच्चे एक दूसरे के साथ खेलते हैं, पढ़ते हैं और खाते हैं। वे एक दूसरे की सीखने में मदद भी करते हैं। इसके लिए मैडम ने बच्चों के अलग-अलग समूह बनाए हैं। इनमें सारी अस्मिताओं के बच्चे शामिल हैं। पढ़ाई के समूह खेल के समूहों से अलग हैं। महत्त्वपूर्ण है कि स्कूल के वातावरण में भेदभाव की कोई गुंजाइश ही नहीं। बच्चे कहने से ज़्यादा देख समझ कर सीखते हैं, और इसे यहाँ बख़ूबी देखा जा सकता है।

"यहाँ एक बगिया है जिसे बच्चों ने बनाया है", बताते हुए संगीताजी ने मेरे सामने लाल चाय का गिलास बढ़ा दिया। "इसमें बच्चों के लगाए पेड़ का नींबू है", कहते हुए मैडम की आँखें मुस्कुरा रही थीं, और सामने मुस्कुरा रहा था बच्चों के हाथों से रोपा और सहेजा गया नींबू का पेड़।

हर बच्चे का सम्मान है : 'ये बच्चे', 'इनके घर वाले', 'इनसे', 'ये लोग' जैसे सम्बोधन बच्चों या उनके घरवालों के लिए करना ठीक नहीं। बच्चे कहते कुछ नहीं, लेकिन सुनते तो हैं, और उन्हें इस बात का बुरा भी लगता है। इस तरह के सम्बोधन उन्हें अलग तरह से श्रेणीबद्ध करते हैं। संगीताजी इस तरह के सम्बोधनों का न तो ख़ुद उपयोग करती हैं न किसी को करने देती हैं। बच्चों के सम्मान में ज़रा-सी भी कमी उन्हें एकदम सहन नहीं।

पढ़ने-लिखने में अलग से सहयोग : पढ़ने-लिखने का सफ़र भी आसान नहीं रहा। लेकिन ये सभी बच्चे किसी से कम नहीं हैं, यह बात समझना भी ज़रूरी था। उन्होंने लोगों के साथ मिलकर बच्चों को अलग से पढ़ाना शुरू किया। इस पहल ने ब्रिजिंग का काम किया। धीरे-धीरे बच्चों का सीखना गति पकड़ने लगा। जब कोविड आया तो लगा अब यह सिलसिला टूट जाएगा। लेकिन कोविड में भी सारे नियमों का पालन करते हुए बच्चों का पढ़ना-लिखना जारी रहा।

जो शहर बहुत कुछ कहता था : संगीताजी कहती हैं, "शहर जो मेरे काम को एक पागलपन का नाम दिया करता था, या कुछ को लगता था कि ये सब ज़्यादा दिन नहीं चलेगा, या मैं यह सब वाहवाही लेने या पुरस्कार पाने के उद्देश्य से कर रही हूँ, धीरे-धीरे इन सारी ग़लतफ़हमियों से पर्दा हटता गया, और जो लोग सन्देह करते थे अब साथ देने लगे हैं। बच्चों ने मुझे इतना प्यार दिया है, मुझ पर इतना भरोसा किया है कि मेरी आँखें भीग जाती हैं। एक बार मैं बीमार पड़ी, स्कूल नहीं जा सकी तो स्कूल के बाद बच्चों ने मेरा ख़ूब ध्यान रखा। कोई जूस निकालकर ला रहा था, कोई फल काटकर खिला रहा था, और कोई मेरे लिए चाय बना रहा था।" लोगों के मन में सवाल आ सकता है कि अपने पास से पैसे ख़र्च करके, अपना समय और ऊर्जा लगाकर कोई क्यों काम करेगा भला! लेकिन मुझे जो सन्तुष्टि मिलती है बच्चों को पढ़ते देख वो बेशक़ीमती है। मेरे लिए यह आसान नहीं होता अगर मेरा परिवार मेरा साथ न देता। साथ देते हैं स्कूल के बाक़ी साथी भी। प्रिंसिपल ललित मोहन बिष्ट कहते हैं, ''मैडम बहुत अच्छा काम कर रही हैं। मैं जितना सम्भव हो उनके प्रयासों में साथ देने का कोशिश करता हूँ।'' भोजनमाता सुनीता देवी कहती हैं कि, ''मैडम सब बच्चों को अपने बच्चों जैसा प्यार करती हैं और सबका बहुत ख़्याल रखती हैं।''

कुछ अफ़सोस, कुछ उम्मीद : सब ठीक चल रहा है, लेकिन अभी बहुत कुछ ठीक होना बाक़ी है। आसपास के स्कूल इन बच्चों को अपने यहाँ दाख़िला नहीं देते। अभी और बच्चे हैं जिनका स्कूल जाना बाक़ी है। टुकड़ों में मदद करना या प्रशंसा करना अलग बात है, लेकिन बच्चों को दिल से अपनाना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। उसमें अभी कमी है। मेरे पास बच्चे पाँचवीं तक ही तो पढ़ सकते हैं, लेकिन उनका सफ़र तो लम्बा है। सबको यह बात समझना ज़रूरी है कि शिक्षा उनका अधिकार है। मुझे बहुत अफ़सोस है कि मेरे स्कूल का एक बच्चा, अंकुल, किसी और स्कूल में दाख़िला न मिलने के कारण दसवीं की प्राइवेट परीक्षा दे रहा है, जबकि उसे स्कूल में दाख़िला मिलना चाहिए था। मैं चाहती हूँ कि अंकुल की पढ़ाई पूरी हो, उसे नौकरी मिले जिससे इस समुदाय को भरोसा हो कि इस दुनिया में उनका भी उतना ही हिस्सा है जितना बाक़ी सबका। सम्मान की रोटी कोई ख़्वाब नहीं है। अभी तो शुरुआत है, यह सफ़र अभी लम्बा है...

> "शिक्षा, सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने का एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन है। समतामूलक और समावेशी शिक्षा न सिर्फ़ स्वयं में एक आवश्यक लक्ष्य है बल्कि समतामूलक और समावेशी समाज निर्माण के लिए भी अनिवार्य क़दम है, जिसमें प्रत्येक नागरिक को सपने सँजोने, विकास करने, और राष्ट्र हित में योगदान करने का अवसर उपलब्ध हो।"
>
> *– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*

प्रतिभा कटियार 14 वर्ष हिन्दी प्रिंट मीडिया में पत्रकारिता करने के बाद अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथ जुड़कर काम कर रही हैं। इनकी 4 पुस्तकें प्रकाशित हैं और दो कहानियों पर लघु फ़िल्मों का निर्माण हुआ है। अंडमान पर लिखा यात्रा संस्मरण और कविता 'ओ अच्छी लड़कियो' कर्नाटक के रानी चेनम्मा विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल है। इनकी कविताओं का गुजराती, मराठी और अँग्रेज़ी में अनुवाद हुआ है।

सम्पर्क : pratibha.katiyar@azimpremjifoundation.org